दशम ग्रंथ का गौरव

धर्म-युद्व की इच्छाधीन रचे गए दशम ग्रंथ का गौरव अनेक आयामी है। यह गुरु गोबिंद सिंह जी की भारतीय संस्कृति को एक अद्वितीय देन है। इस ग्रंथ ने राष्ट्र एवं धर्म-समाज का स्वरूप ही बदल डाला। गुरु साहिब भारतीय इतिहास के उस समय में प्रकट हुए थे जब भारतीय गौरव विदेशी शासकों के अमानवीय अत्याचारों और अपनी भीतरी विसंगतियों एवं द्वंद्वों के कारण बहुत ही बुरी अवस्था में धूलि धूसरित हो रहा था। केवल नाम की ही भारतीयता रह गई थी

उस निबड़ अंधकार में दशम गुरु के रूप में अतुल्य पराक्रम से समन्वित एक नया प्रकाश सन् १६६६ ई. में पटना नगर में हुआ। उस समय धर्म का स्वरूप कुछ रूढ़ परम्पराओं, मिथ्या विश्वासों, कर्मकाण्डों और काल्पनिक स्वर्गो-नरकों के कुचक्र तक सीमित हो चुका था। सच्चा धर्म लुप्त हो गया था।

श्री गुरु नानक देव ने शिथिल, संकीर्ण अमानवीय धर्म-साधना को अस्वीकार किया और सर्व-कल्याण-कारी धर्म-साधना को जन्म दिया। इस साधना के प्रचार एवं प्रासार के लिए सर्वस्व निछावर करने अथवा प्राणों का उत्सर्ग करनें से संकोच न किया। श्री गुरु अर्जुन देव और गुरु तेग बहादुर जी ने प्राणों की आहुति दे कर अपनें आप को कुर्बान करने की परम्परा का प्रारंभ किया।

अंत मे श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपनी समूची 'सर्व-कल्याण कारी' भावना को 'धर्म-युद्व' के रूप में क्रियाशील किया और तत्कालीन दारुण दानवी अत्याचारों के पूरे तंत्र को निष्क्रिय बना डालनें वाले एक महान् कर्मयोगी के रूप में मानवीय इतिहास के सार्वभौमिक फलक पर प्रतिष्ठित हुए।

गुरु गोबिंद सिंह का व्यक्तित्व बहुत महान् था। उन की दृष्टि,सृष्टि (खालसा) और साहित्य-साधना में एक सहज परन्तु महान समन्वय की प्रक्रिया सर्वत्र लक्षित की जा सकती है। उन्होंने गुरमति की समस्त सैद्वांतिक विचारधारा को अपनी वाणी के द्वारा विस्तार दिया और इस विस्तार को व्यावहारिक रूप देने के लिए जन-मुक्ति-संधर्ष प्रारंभ किया। मन, वचन और कर्म के विभिन्न स्तरों पर यह एकरूपता उन के साहित्य को उदात्त रूप प्रदान करती है। इस साहित्य ने सारे समाज का काया-कल्प कर डाला।

गुरु जी ने वस्तुतः शोषण और अत्याचार-रहित समाज की सिरजना के लिए 'धर्म जुद्ध का चाओ' के उद्देश्य निमित साहित्य की रचना की और ऐसे समाज के लिए धर्म से अनुप्राणित जिस सम्पूर्ण मानव की कल्पना की, वह थी खालसा की सिरजना। उस खालसा का स्वरूप था-

जागत जोति जपै निसबासुर एक बिना मन नैक न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै ब्रत गोर मढी मट भूल न मानै।
तीरथ दान दया तप संजम एक बिना नह एक पछानै।
पूरन जोति जगै घट मै तब खालसा ताहि नखालस जानै।

गुरु गोबिंद सिंह जी के द्वारा रचा गया साहित्य अब 'दशमग्रंथ' के रूप में उपलब्ध है। इस को यद्यपि गुरु गोबिंद सिंह के महा प्रस्थान के पश्चात भाई मनी सिंह तथा कतिपय अन्य प्रमुख सिखों ने संकलित किया जो गुरु जी की सभा में सदा प्रस्तुत रहते थे और जिन्हों ने गुरु साहिब की रचनाओं का पुर्ण ज्ञान था। आनंदपुर का दुर्ग त्यागने के पश्चात ऐसा सारा साहित्य भले ही सरसा नदी में बह गया, परन्तु उनकी प्रतिलिपियों का लाभ उठा कर जो संकलन की व्यवस्था की गई, वही 'दशमग्रंथ' के रूप में हमारे पास सुरक्षित है। इसे पहले 'बचित्र नाटक ग्रंथ' कहा जाता था और कालांतर में 'दसवें पातशाह दा ग्रंथ' कहा जाने लगा। इसी का सरलीकरण 'दशम-ग्रंथ' के रूप में हुआ। 'दशमग्रंथ' में संकलित रचनाओं का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है-

जापु साहिब

'दशम ग्रंथ' के आरंभ में संकलित जापु साहिब खालसा का स्रोत्र है जिस में परम-सत्ता की स्तुति निर्गुणवादी विशेषणों के द्वारा की गई है। इस रचना में एक ओर गुरमति में प्रतिपादित परमसत्ता के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट किया गया है और दूसरी ओर उसका विस्तरण किया गया है। इस का अपना विशिष्ट महत्तव है और इसमें अभिव्यक्ति का स्वरूप पूर्णतया विलक्षण और ओजस्वी है

वस्तुतः मध्यकाल के निगुर्णवादी साहित्य के इतिहास में 'जापु साहिब' निगुर्ण सम्बंधी समस्त मानवीय बिंदुओं को एक व्यावहारिक एवं समन्वित रूप प्रदान करता है। इस लिए जापु साहिब पंजाब में विरचित निर्गुण परक साहित्य की परिधि में एक शिरोमिणी रचना के रूप में प्रतिष्ठित है, साथ ही, यह भी सच है के उत्तर भारत के समस्त निर्गुणवादी साहित्य में इतनी तेजस्वी, ओजस्वी और बहु-आयामी कोई अन्य कृति कद्‌ाचित नहीं है।

जापु साहिब गुरु जी के नितान्त अंतरंग (उन के आत्म चिंतन- मंथन-मनन) के क्षणों की वाणी हैं, अतः इस में निर्गुणवाद के सभी सकारात्मक पक्षों की अधिक विस्तृति् संभव हो पाई है। इस में उस परम-सत्ता की उपासना की गई है। जो अजाते (जाति-रहित), अपाते (पांति-रहित) अमजबे (मज़हब-रहित), अधरमे (धर्म-रहित) के साथ-साथ अजबे (अद्‌भुत स्वरूप) भी है। वह अरि-संघारक भी है। इस दुष्ट दमनकारी रूप की कल्पना के साथ भयभीत समाज में एक ऐसी शक्ति का संचार हुआ जो कभी भी दबाई न जा सकी।

शैली एवं भाषा की दृष्टि से यह एक विलक्षण रचना हैं। भारतीय साहित्य परम्परा में यह अलग किसम की रचना है। इस में प्रयुक्त शब्दावली और उन शब्दों से सम्बंधित भाषाएँ और उनके द्वारा विकसित धार्मिक संकल्पो और परम-सत्ता सम्बधी उन के भाषाई प्रतीकों के द्वारा इस रचना को सर्व-धर्म-ग्राही बनाया गया है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न धर्म-अनुयायियों के द्वारा इस का पठन पाठन किया जाता है। वस्तुतः गुरुवाणी का संदेश किसी एक धर्म तक सीमित नहीं था, अपितु सभी धर्मों, जातियों, राष्ट्रों, धार्मिक सम्प्रदायों के लिए सांझा है। इस लिए गुरुवाणी के सर्व-सांझे विशेषण से विशिष्ट किया जाता है। यह सर्व-सांझा-पन वाणी की भाव-सामग्री तक ही सीमित नहीं इस में प्रयुक्त भाषा भी सर्व-सांझी है, किसी सम्प्रदाय अथवा देश तक बंधी हुई नही हैं। गुरुवाणी के लिए प्रत्येक भाषा पवित्र है, हर एक शब्द शुद्व है। जापु साहिब भाषाई पवित्रता, शुद्वता और सर्वसाझेपन का सुंदर नमुना है।

इस रचना का एक प्रयोजन यह भी है कि इसमे भक्ति एवं शक्ति का समन्वय हुआ है। यहाँ भक्ति परमात्मा की आराधना से सम्पन्न होती है। युग की भयानक परिस्थितियों के अनुसार भक्ति के साथ शक्ति की आवश्यकता पड़ गई थी। केवल शक्ति अंधी है, आवश्यक नही कि उसे किसी नियंत्रण मे रखा जा सके। भक्ति से सम्बद्व होने से यह नर-संघारक के स्थान पर पाप-विनाशक बन जाती है। भक्ति एवं शक्ति के समन्वय को आधार बनाने वाले साधक भक्ति-भाव की अभिवयक्ति के लिए जिस युक्ति का प्रयोग करते हैं, उस की शब्दावली एवं स्वभाव ओजस्वी होता है। यह सही है कि जिज्ञासु की निगुर्ण भावना को प्रकट करने वाली यह एक अद्दितीय रचना है, परन्तु यह संत-सिपाही को युद्व-कार्य के लिए उत्साहित भी करती हैं। इस का रचना-विधान गतका की गति पर हुआ है। युद्व की गति एवं पैतरा के बदलाव के अनुरूप इस में दस प्रकार के छंदो का प्रयोग किया गया है और २२ बार छंद-परिवर्तन हुआ है।

गुरु गोबिंद सिंह ने जापु साहिब के आध्यात्मिक वैभव को जिस साहितियक कौशल, छंद-विधान की अपूर्व प्रस्तुति और अपने लोकोत्तर सौंदर्य बोध एवं अपनी अद्‌भुत भाषाई सूझ-बूझ के साथ प्रस्तुत किया हैं, इस को एक साहित्यक चमत्कार ही कहा जा सकता है। वस्तुत जापु साहिब उन समस्त मानवीय मूल्यों के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध रचना है, जिन मूल्यों की स्थापना का स्वप्न मानव देखता आया है।

अकाल उसतति

दशम ग्रंथ मे संकलित यह दूसरी महत्वपूर्ण भाक्ति-प्रधान रचना है। इसमें गुरु जी ने इस भ्रम को दूर किया है कि कोई व्यक्ति धर्म, भौगोलिक स्थिति, इतिहास, संस्कृति,भाषा,स्वरूप और रंग के कारण दूसरों से विशेष है। इस बनावटी एवं अमानवीय विशिष्टता का गुरु जी ने निषेध किया है और निर्द्वंद्व रूप में स्थापित किया है कि सभी मनुष्य एक है-

कोऊ भइओ मुंडिया सन्यासी कोऊ जोगी भइओ,
कोऊ ब्रहमचारी कोऊ जती अनमान बो।
हिंदू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहचान बो।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दुसरो न भेद कोई भूल भ्रम मान बो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव एकु,
एक ही सरूप सभै एकै जोति जान बो।

इस रचना में निगुर्णवाद की सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों दृष्टियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत कर आध्यात्मिक संकल्पों तथा दार्शनिक एवं सामाजिक विश्वासों के विशद भाष्य का रुप धारण कर लेता है। इस दृष्टि से यह रचना निगुर्णवादी दृष्टि का विश्व रूप में माना जा सकता है।

इस रचना में विश्वरूप में ब्रह्म का जो रूप पेश किया गया है, वह न केवल दार्शनिक दृष्टि से प्रामाणिक है, अपितु उस के चित्रण के लिए किया गया बिम्बविधान भी बहुत सुन्दर और प्रभावशाली है। इस प्रकार के निरूपण से पाठक एवं श्रोता को मोहित किया गया है। उदाहरण के रूप में :

जैसे एक आग ते कनुका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुइ कै फेरि आग मै मिलाहगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहगे।
जैसे एक नद ते तरंग कोट उपजत है,
पान के तरंग सबै पान ही कहाहगे।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहगे। (१७)

इस रचना में अनेक स्थलों पर गुरू जी ने जाति-प्रथा के विरुद्व अपनी निर्गुणवादी दृष्टि को विस्तार सहित प्रस्तुत क्यिा है। पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती निर्गुणवादी विचारधारा के इतिहास में इतने प्रबल और ओजस्वी स्वर के साथ भारत में से जाति-प्रथा को उखाड़ फेंकने का साहस करने वालो में गुरु गोबिंद सिंह का नाम मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है

समूचे तौर पर इस रचना में गुरु जी ने परमात्मा के निराकार, निर्विकार, निर्गुण, सर्वव्यापक, घट-घट वासी रूप का वर्णन किया है। उसके लिए राजा-रंक, हाथी-कीड़ी सब समान हैं। उस का अपना पराया कोई नहीं है। उस की ज्योति हर ओर विस्तृत है। वह सब में रमण कर रहा है और सब के परे भी है। वह समस्त सृष्टि को बनाने वाला, स्थापित करने वाला और संघार करने वाला है। उस को प्राप्त करने का साधन केवल प्रेम अथवा प्रेम-भक्ति है, शेष सब साधन व्यर्थ है, पाखंड़ हैं, त्रिगुणी हैं, वासनाओं के स्रोत हैं। सांसारिक प्रपंच क्षण-भंगुर हैं। उस में खचित होना अनुचित है। इन सब कर्मकांडो और साधना-विधियों को छोड़कर अनुभूति जन्य ज्ञान के चक्षु से परमात्मा की वास्तविकता को समझना सच्ची साधना है।

बचित्र नाटक

दशम ग्रंथ में संकलित यह तीसरी रचना है। जिस प्रकार इस रचना के अंत में और चंडी चरित्रों, चौबीसावतार, उपावतार नामक प्रसंगो के अध्यायांत में अंकित समापन सूचक उक्तियों से पता चलता है कि यह सब वचित्र नाटक का ही अंग हैं। स्पष्ट है कि इस रचना में केवल चरित्र-नायक गुरु गोबिंद सिंह की अपनी कथा का ही वर्णन नहीं है, अपितु संसार-मंच पर विभिन्न युगों में प्रकट हुए नायकों के कथा-प्रसंगो का चित्रण है। परन्तु इस शीर्षक अधीन जो रचना 'दशम ग्रंथ' में संकलित है, उस का सम्बंध गुरु साहिब की अपनी-कथा, अर्थात् अपने जीवन से है। वस्तुतः यह मूल रचना की भुमिका-मात्र है। इस में कुल १४ अध्याय है और ४७१ छंदों में समाप्त हुई है। इस में गुरु साहिब के केवल ३२ वर्षों के जीवन-वुत्त को समोया गया है। गुरु साहिब ने गत-जन्म की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए तथा बेदी एवं सोढी वंश-परम्पराओं की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए अपने जन्म के उद्देश्य को प्रस्तुत किया है -

मै अपना सुत तोहि निवाजा।
पंथ प्रचुर करबे कहु साजा।
जाहि तहां तै धरमु चलाइ।
कबुधि करन ते लोक हटाइ।

इस रचना के आरभ्भ में गुरु जी ने अपनें इष्ट-देव का स्वरूप-चित्रण करते समय उसको अधिकतर रौद्र, भयानक, वीर्यवान, बताया है। वह सर्व-व्यापक, निराकार और निर्विकार भी है। समय की आवश्यकता के अनुरूप उस समय की जनता के समक्ष एक ऐसे परमात्मा के स्वरूप को प्रस्तुत करना था जो सौभ्य, कोमल और सौंद्रर्य-युक्त ही नही, अपितु भयानक स्वरूप वाला काल-पुरुख है। परास्त शक्तियों को पुनः बलशाली बनाने के लिए आवश्यक था

कि उनका इष्टदेव, उनका प्रेरणा-स्रोत्र महान शक्ति सम्पन्न हो। ऐसी शक्ति का आश्रय लेकर साधकअथवा उपासक कुछ कर गुजरने का साहस कर सकता है।

इस रचना का नाम यद्यपि नाटक वाला है, परन्तु यह नाटक की सीमा अथवा सांचे में ढली हुई नहीं है और न ही इस मे रंगमंच का कोई विधान है। न ही नाटक अथवा रंग-मंच सम्बंधी कोई अन्य संकेत उपलब्ध है। इस को अधिक से अधिक नाटकीय काव्य, अथवा काव्यनाट्य कहा जा सकता है। इस में यदि कोई नाटकीय व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है, तो वह केवल पद्यों की योजना और संवादो के द्वारा ही सामने आई है। वास्तव में विश्वमंच पर परम्परागत अवतार परम्पराओं के संदर्भ में, गुरु गोबिंद सिंह जी के पराक्रम को दर्शाना इस रचना का मनोरथ है।

चंडी चरित्र

'बचित्र नाटक' की "अपनी कथा" के पश्चात् दो चंड़ी चरित्र संकलित है, जो वास्तव में 'बचित्र नाटक' का ही अंग हैं। इन दो चंडी-चरित्रो के पश्चात् 'चंडी दी वार है, जो भले ही 'बचित्र नाटक' का अंग नहीं, परन्तु चंडी के पराक्रम से सम्बद्व होने के कारण पहले दो चंडीचरित्रो के साथ ही स्थान दिया गया है।

पहले चंडी-चरित्र (उक्ति विलास) मे कुल २३३ पद्य हैं और आठ अध्याय है। गुरु गोबिंद सिंह जी के अनुसार इस की रचना का उद्देश्य कौतुक-हेतु है। कौतुक से अभिप्राय है साधारण जनता को तत्कालीन बलशाली साम्राज्य के विरुद्व क्रांति मचाने के लिए तैयार करना और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार होना। महाकवि गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने इष्ट देव केआगे प्रार्थना भी कुछ इसी प्रकार की है-

देह सिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहु न टरो।
न डरो अरि सो जब जाइ लरो निसचै कर अपनी जीत करो।
अरु सिख हौ अपने ही मन को इह लालच हउ गुन तउ उचरो।
जब आव की अउध निदान बनै अतही रन मैं तब जूझ मरो।२३१।

इस चरित्र की रचना मुख्य रूप में सवैया छंद में की गई है और इस के रस का स्वरूप रूद्रमयी है। युद्ध-वर्णन में उक्ति चमत्कार और अलंकारों की सजावट का विशेष ध्यान रखा गया है। युद्ध-वर्णन स्वाभाविक ही नहीं, मानवीय गुणों से सम्पन्न है और समकालीन युद्ध-पद्धति को सामने रखा गया है। काव्य-कौशल की दृष्टि से यह उत्तम रचना है। गुरु जी की अपनी स्थापना है कि 'रतन प्रमुद कर बचन चीन ता में गचौ'। इसकी कथा का आधार 'मार्कंडेय पुराण' की 'दुर्गा सप्तशती" है। परन्तु कवि ने मूल कथा से केवल सूत्र ही लिए है, शेष सब कुछ कवि की अपनी कला का चमत्कार है।

दूसरे चंडीचरित्र में कुल २६२ छंद हैं और यह भी 'मार्कंडेय पुराण' की "दुर्गा सप्तशती" पर आधारित है। प्रथम चंडी चरित्र में उक्ति-युक्ति के माध्यम से चंडी-चरित्र का चित्रण हुआ है, परन्तु इस में युद्ध का वर्णन अधिक हुआ है और वह भी स्पष्ट और जीवंत। युद्धानुरूप लधु छंदों का प्रयोग कर तीव्र, अति तीव्र गति वाले छंद-विधान से युद्ध का चित्रण किया गया है। इस में गुरु जी की रुचि युद्ध-वर्णन की ओर रही है और युद्ध-वर्णन भी बहुत स्वाभाविक, संजीव और युग-पद्धति के अनुरूप है। इस में वीर रस का प्राधान्य है और रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसों का आनंद भी प्राप्त किया जा सकता हैं। इस में हुई निरर्थकशब्द-योजना युद्ध का वातावरण सिरजने में बहुत सहायक सिद्व हुई है। इस में युद्ध-भुमि के बड़े यथार्थ दृश्य प्रस्तुत किए जा सके है। इस की भाषा ओजस्वी और प्रवाहमान है।

चंडी-चरित्र से सम्बद्ध तीसरी रचना 'चंडी दी वार' है। इसको भगवती की वार, अथवा दुर्गा की वार भी कहा जाता है। कुल ५५ पद्यों में रची गई दशम ग्रंथ में यह एक-मात्र पंजाबी की रचना है। इस का प्रथम पद्य सिक्ख अनुयायियों द्वारा की जाने वाली 'अरदास' (प्रार्थना) का आरंभिक अंश है-

पृथम भगौती सिमर कै गुरू नानक लईं धिआइ।
फिर अंगद गुर ते अमरदास रामदासै होईं सहाइ।
अरजन हरि गोबिंद नूं सिमरौ स्री हरि राइ।
स्री हरि क्रिसन धिआईए जिस डिठै सभ दुख जाइ।
तेग बहादर सिमरीए घर नउनिध आवै धाइ।
सभ थाई होइ सहाइ।

इस में चंड़ी की पौराणिक कथा की केवल प्रमुख धटनाओं को ही लिया गया है, शेष सब युद्ध-वर्णन है। इस प्रकार यह एक मौलिक एवं स्वतंत्र रचना हैं। इस का उपमान-विधान बहुत सुंदर बन पाया है और जन जीवन के बहुत निकट है। फलस्वरूप इस से सैनिकों को बहुत प्रेरणा मिलती रही है। इस में प्रयुक्त हुई शब्दावली युद्ध का वातावरण सिरजने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इस का युद्ध-वर्णन बहुत सजीव है। यह पंजाबी साहित्य की श्रेष्ठ 'वार' मानी जाती है। प्राचीन काल में युद्धों के समय इसका रुचि पूर्वक पाठ किया जाता था। अब भी इस का पठन मन-मानस को तपो-भूमि में बदल डालने के लिए क्रिया जाता है।

महानारी चंडी के चरित्र को इसलिए कई वार महाकवि गुरु गोबिंद सिंह को चित्रित करना पड़ा, क्योंकि गुरू जी ने अपने मन में सोचे हुए धर्म-युद्ध के लिए व्यापक जन-आधार तैयार करना था। इस लिए पार्वतीय क्षेत्र के चंडी के उपासकों के सामने चंडी के अतुल्य पराक्रम और दानव दलन के प्रति, चंडी की प्रतिबद्धता को बडे रोचक, परन्तु तेजस्वी ढंग में प्रस्तुत किया है।

इन तीनों रचनाओं में एक पौराणिक वीरांगना की शूरवीरता, उसके औदार्य और उसके भक्त-वत्सल रूप की झाकियाँ प्रस्तुत की गई है। एक स्त्री के पराक्रम के द्वारा भयभीत हो चुकी जनता को फिर से उत्साहित किया गया है। सचमुच चंडी के वीरता प्रधान प्रसंगो से प्रेरित होकर जनता का व्यवहार की बदल गया था। गुरु जी ने अवतार कथाओं के आरंभ में चंडी-चरित्रों को संकलित कर मातृ-भावना के प्रति बहुत प्रेरणा दी है।

ज्ञान प्रबोध

यह रचना स्वतंत्र रूप में दशम ग्रंथ में संकलित की गई है। इस मे कुल ३३६ पद्य है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इसके दो भाग है। एक भाग का अंत १२५ छंदो के बाद है। इस भाग में काल-पुरख का स्वरूप चित्रित हुआ है। वह परम-सत्ता अनंत, अदृश्य, अद्वैत, निपेर्क्ष और वर्णनातीत है। वह सर्वशक्ति सम्पन्न, आनंद- स्वरूपी और सर्वव्यापक है।

वह सत्ता अनाथों की नाथ, पतितों की उद्धारक, दुख-क्लेष नाशक और काल-धर्म की सीमाओं से ऊंची है। वह रूप-रेख-हीन, जन्म जन्मांतर के चक्र से मुक्त और दुष्टों का विनाश करनें वाली है। इस प्रसंग में परमात्मा के गुणवाचक नामों की व्याख्या भी हो पाई है। यह समस्त चित्रण गुरुवाणी की परम्परा में हुआ है। मूल विचारधारा की विस्तुति ही इसे मानना पड़ेगा।

छंदांक १२५ के पश्चात् दूसरा भाग प्रारंभ्भ होता है। इस के आरंभ में आत्मा ने परमात्मा से कतिपय प्रश्न पूछे हैं, यथा वह सत्ता कौन सी है जिसका तेज अमित है और स्वरूप अद्भुत है। इन प्रश्नों के उत्तर भी इन्हीं में निहित हैं। सर्वथा भिन्न प्रकार की शैली में लिखी इस रचना में परमात्मा की और से बताया गया है कि ब्रह्म का तेज असीम है, गति-रहित और कामनाओं से मुक्त है। वह भेद, भ्रम, काल, कर्म आदि की सीमाओं से परे है। उस के लिए वैरी तथा मित्र एक-समान हैं। वह न पवन से सुखाया जा सकता है और न ही पानी में डूब सकता है, वह न अग्नि में जलता है और न ही काटा जा सकता है।

तदुपरांत आत्मा ने चार धर्मों अथवा वर्गों के सम्बंध में पूछा। उत्तर में चार धर्मों को गिनाया गया — राज धर्म, दान धर्म, भोग धर्म और मोक्ष धर्म। आत्मा के पुनः पूछने पर पहले दान धर्म का विवरण प्रस्तुत किया गया। कि भूतपूर्व राजा लोगों ने किस प्रकार इस धर्म की पालना की है।

सर्वप्रथम महाभारत में विजयी हुए युधिष्ठिर के दान धर्म का वर्णन हुआ है। उस प्रतापी राजा ने पहले राजसूय यज्ञ किया और फिर अश्वमेध यज्ञ किया। तत्पश्चात् परीक्षित्, जनमेजय, अजयसिंह, मुनि राजा आदि का वृत्त दिया गया। इस विवरण के पश्चात् यह रचना आगे नहीं चलती और शेष तीन धर्मों-- राज धर्म, भोग धर्म और मोक्ष धर्म-- का कोई विवरण नहीं दिया गया।

दान धर्म के वर्णन के समय पौराणिक पृष्ठभूमि के साथ यज्ञों का विधान, दैत्यों तथा देवताओं की युद्ध--कथा, सुरापान, जुआ खेलने और पर-नारी के साथ सम्बंध रखने के दुष्परिणामों को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ वैदिक यज्ञों और धर्म ग्रंथों के पठन-पाठन की पुरातन विधि के सम्बंध में पर्याप्त प्रामाणिक जानकारी और सामग्री जुटाई गई है। इस प्रकार की सामग्री वाली रचना उस समय उपलब्ध नहीं थी। अतः इस रचना का अपना ऐतिहासिक महत्व है।

चौबीसावतार

यह दशम-ग्रंथ की महत्वपूर्ण रचना है। इस में विष्णु की २४ अवतार कथाएँ है। इन २४ अवतारों की सूची इस प्रकार है-- मच्छ,कच्छ, नर-नारायण,मोहिनी, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्म, रुद्र, जलंधर,बिसन, शेषशायी,अहर्तदेव, मनुराजा, धन्वन्तरि, सूर्य, चन्द्र, राम, कृष्ण, नर,(अर्जुन), बुद्व और कल्कि। इनमें से कृष्णावतार सबसे अधिक विस्तृत है और उसके पश्चात रामावतार और कल्कि अवतार की कथाएँ हैं।

अवतारवाद पुराण साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। सब से अधिक विष्णु के अवतारों का चित्रण हुआ है। विचाराधीन प्रसंग के चौबीस अवतार में सें कतिपय पुराण साहित्य के अनुरूप है। कुछ रचयिता ने अपनी इच्छानुसार संयुक्त किए इसलिए इस अवतार श्रृंखला को पूर्णरूपेण पौराणिक श्रेणी का नहीं माना जा सकता।

इस रचना के आरम्भ (में अवतारों) के सम्बंध में दशम गुरु ने अपनी धारणा स्पष्ट की है। जो चउबीस अवतार कहाये। तिन भी तुम प्रभ तनक न पायें। यहाँ विष्णु को परम-सत्ता न मान कर काल-पुरख को अवतारों का स्रष्टा माना गया है। यह वस्तुतः धर्म-युद्ध के लिए तैयार किए जा रहे नए समाज को पूर्ववर्ती परम्पराओं से जानकर करनें का सद्प्रयास है। अंत में मीर महदी के हाथ से कल्कि अवतार का अन्त दर्शाया गया है।

कुल मिलाकर इस रचना में बताया गया है कि भाराक्रांत धरती अपने उद्धार निभित्त काल-पुरख के पास जाती है, जो उस की सहायता के लिए विष्णु को अवतार धारण करने का आदेश देते हैं। विष्णु कोई न कोई अवतार धारण कर धरती के भार को हरता है, परन्तु बाद में जब वह अविवेकी हो जाता है, तो उस के अहंकार को न सहन कर काल पुरख उस को नष्ट कर देते हैं और उस के स्थान पर किसी अन्य को अवतरित कर देते है। इन अवतारों की विशिष्टता है अहंकारी हो जाना और अपने दुष्कर्मों के फलस्वरूप नष्ट हो जाना। यह अवतार युद्ध-कला में प्रवीण हैं और युद्ध के द्वारा अपनी धांकबिठाते है। वस्तुतः यह सारी रचना युद्ध के प्रति उत्साह पैदा करने के लिए की गई है। कृष्णावतार के प्रसंग में गुरु जी की स्थापना है-

दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर बासना नाहि प्रभ धरम जुध के चाइ।

अपने इस संकल्प को एक सवैया में और भी अच्छी तरह से स्पष्ट करते हुए गुरु जी ने कहा है कि -

छत्री को पूत हौ बामन को नहि कै तपु आवत है जु करो।
अरु अउर जंजार जितो गृह को तुहि तिआग कहा चित ता मै धरो।
अब रीझ केदेहु वहै हम कउ जोऊ हउ बिनती कर जोर करो।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन मै तब जूझ मरो।

अवतारों के इस वृत्त से गुरु गोबिंद सिंह के इष्ट के स्वरूप के सम्बंध मे कोई भ्रांति न फैल जाए इस संदेह को दूर करने के लिए गुरु जी ने भली-भाँति अपने इष्ट के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है—

पाइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आंख तरे नही आनिओ।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहै मत एक न मानिओ।
सिम्रिति सासत्र बेद सबै बहु भेद कहै हम एक न जानिओ।
स्री असपान क्रिपा तुमरी करि मै न कहिओ सब तोहि बखानिओ।

अधिकांश अवतार गंम्भीर युद्ध करते हुए सत् की स्थापना करते हैं। रामावतार तथा कल्कि अवतार कथाओं मे युद्ध का वर्णन स्पष्ट ढंग से हुआ है और युद्ध के सजीव दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं। कृष्णावतार में युद्ध का वर्णन अलंकृत ढंग से हुआ है। सुंदर उपमान-विधान के द्वारा युद्ध-कर्म के प्रति रूचि उत्पन्न की गई है

उपवतार

चौबीसावतार प्रसंग के पश्चात् उपावतारों का वर्णन है। इस रचना के दो भाग है- ब्रहमा अवतार और रुद्र अवतार। ब्रह्मा के अवतार धारण करने के पीछे भी चौबिसावतारों वाली अहंकारी होने की भावना काम कर रही है। काल-पुरख की आज्ञा से ब्रह्मा ने वेदों की रचना की, परन्तु अहंकारी हो गया। काल पुरख ने उस को धरती पर भेज दिया। उसको काल-पुरख ने आज्ञा दी कि तुम सात अवतार धारण करो, ताकि तुम्हारी गति हो सके। ये सात अवतार है-

वाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, शास्त्रोद्धारक और कालिदास। ब्रह्मा से सम्बद्ध इस प्रकार की अवतार परम्परा का उल्लेख पुराणों में नही हुआ। वस्तुतः यह गुरु जी की मौलिक कल्पना है।

ब्रह्मा के पश्चात् रुद्र के दो अवतारों - दत्तात्रेय और पारसनाथ- का चित्रण हुआ है। रुद्र के अवतार धारण करने का मूल कारण ब्रह्मा के अवतार धारण करने के कारण से मेल खाता है। अधिक योग साधना करने के फलस्वरूप रुद्र को अहंकार हो गया। वह अपने आप को सर्वश्रेष्ठ मानने लग गया। अहंकार के फलस्वरूप काल-पुरुख उस पर नाराज़ हो गया। अंततः काल-पुरख की आज्ञा मान कर रुद्र ने दो अवतार धारण किए। पुराण साहित्य मे दत्तात्रेय का प्रसंग अवश्य मिलता है, परन्तु रूद्र के अवतार रूप में वह कहीं भी चित्रित नहीं हुआ। पारस नाथ की कथा एवं भावना, एकदम गुरु जी की कल्पना पर आधारित है

इन अवतार प्रसंगो का गंम्भीरता से अनुशीलन करने पर स्पष्ट होता है कि मुख्य रूप में इनको तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- शस्त्रधारी अवतार, शास्त्रधारी अवतार और कल्याणकारी अवतार।

जिन अवतारी शक्तियों ने दैत्य शक्तियों का दमन अपने पराक्रम से किया और अपनी शस्त्रकला का प्रदर्शन किया, उन्हें शस्त्रधारी अवतार माना जा सकता है। परन्तु जिन्होंने जनता को मानसिक और कलुषित भ्रम-जाल से ही नहीं निकाला अपितु अपने प्रचार के द्वारा सत्यमार्ग की स्थापना की, उनको शास्त्रधारी अवतार कहा जा सकता है। जिन्होने लोगो को बीमारियों और दुखों से बचाया और लोक-मंगलकारी रुचियाँ उत्पन्न कीं, उन्हें कल्याणकारी अवतार माना जा सकता है

इन सब अवतार-कथाओं की संरचना लगभग एक समान है। पृष्ठभूमि में दैत्य-शक्तियाँ, अथवा भ्रमजाल में ग्रस्त मानसिक भावनाएँ अथवा लोक-विनाशक रुचियाँ हैं। युद्ध अथवा विचारधारा से सम्बद्ध संघर्ष होता है। और अंततः सद् पक्ष की विजय होती है। गुरु जी ने किसी भी अवतार को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया। उनकी स्पष्ट धारणा थी की अवतार में कुछ ही दिव्य तत्त्व होता है, परन्तु उसे किसी तरह भी प्रभु नहीं माना जा सकता। वास्तव मे गुरु जी ने एक ऐसे समाज की संरचना की व्यवस्था करनी थी जिस से समाज मे दै्त-मूलक भेदभाव आधारित भ्रम जाल को नष्ट कर एक सचेत एवं जागृत मानव (खालसा) की स्थापना की जाए

अवतारवाद का यह संकल्प दशम-ग्रंथ से भिन्न और कहीं भी नहीं मिलता। अवतार परम्पराओं में कतिपय महान् व्यक्तियों अथवा सुप्रसिद्ध शूरवीरों को प्रतिष्ठित करना गुरु जी का मन्तव्य था। अवतारों से सम्बद्ध इस प्रकार की कथाओं का विस्तार दशम--ग्रंथ की एक विशेष देन है। ऐसा करने से भारत की उदात्त वीरता और जनसेवा, इन दोनों प्रकार के कार्यो को समर्पित व्यक्तित्वों को प्रतिष्ठित कर दशम--ग्रंथ में एक नयी और सर्वथा स्वस्थ प्रवृति ने जन्म लिया है। निश्चय ही इस प्रकार का साहित्यिक पराक्रम इतिहास में पूर्णतया दूर्लभ्य है।

फुटकर रचनाएँ

इस प्रकार की तीन रचनाएँ हैं- शब्द हजारे, सवैये और खालसा महिमा

1. शब्द हजारे

ये मूलतः राग-बद्ध नौ शब्द अथवा पद्य है जिन की रचना-शैली बिसनपदों से दूर तक समानता रखती है। इनमें गुरु जी ने अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं की स्थापना की है योग के बाह्य आचारों, पाखंडों, वासनाओं का विरोध किया गया है। और जिज्ञासु को सद् मार्ग पर चलने का उपदेश किया गया है। इन के साथ 'ख्याल पातिशाही १०' भी शामिल है जो अनुश्रुति के अनुसार गुरु जी ने माछीवाड़ा के जंगल मे पंजाबी भाषा में उचारा था-

मित्र प्यारे नू हालु मुरीदा दा कहणा।
तुधु बिनु रोगु रजाइयां दा ओढण नाग निवासा दे रहणा।
सूल सुराही खंजर प्याला बिंग कसाइया दा सहणा।
यारड़े दा सानू सथर चंगा भठ खेड़िया दा रहणा।

2. सवैये

ये संख्या में ३३ हैं। इन में खालसा के स्वरूप के अतिरिक्त परमात्मा के स्वरूप के विभिन्न पक्षों को 'अकाल उसतति' वाली शैली में दर्शाया गया है। परमात्मा वेद, कतेब, पुराण, कुराण, आदि धर्मग्रंथों से ऊँचा, सर्वव्यापक, अंतर्यामी, अवतारवाद की कल्पना से परे और भक्तों की सदा सहायता करने वाला है। इस के अतिरिक्त भेखधारी साधुओं, सन्यासिओ के बाह्य आडम्बरों और उनकी मानसिकता को स्पष्ट किया गया है। इस प्रसंग में मंसदों के कृत्यों पर भी प्रकाश डाला गया है कि वे सेवकों का कैसे शोषण करते थे।

3. खालसा महिमा

इस में कुल चार पद्य है। इस में खालसा की महिमा को उजागर किया गया है। यज्ञ करने के लिए आए पंड़ित को गुरु जी ने सांत्वना देते हुए समझाया है कि खालसा का महत्व बहुत गौरवशाली है, क्योंकि उस की सिरजना के फलस्वरूप ही हम सब की प्रतिष्ठा बनी रह सकती है --

जुध जिते इनही के प्रसादि इनही के प्रसादि सु दान करे।
अघ ओघ टरै इनही के प्रसादि इनही की कृपा फुन धाम भरे।
इनही के प्रसादि सु विद्या लई इनही की कृपा सभ सत्रु मरे।
इनही की कृमा के सजे हम है नही मो सो गरीब करोर परे।

शस्त्रनाम माला

युग के वीरतामय वातावरण को निरंतर स्थिर रखने और शस्त्रों अस्त्रों की समस्त पृष्ठभूमि से नए सिख समाज (खालसा) को जानकर करने के उद्देश्य से यह शस्त्रों के नामों का कोश सिद्ध होता है। इस को दृष्टकूट शैली में लिखा हुआ माना जा सकता है। इस प्रकार की शस्त्रों के नामों की सूचना देने वाली रचना की उपलब्धि पहले कहीं भी नहीं है। इस लिए यह अपने ढंग की अनूठी रचना है

कुल १३१८ छंदों की रचना के केवल पांच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में भगवती देवी की स्तुति है और भगवती पर अनेक प्रकार के शस्त्रों का आरोप किया गया है। इस प्रकार के वर्णन से भगवती देवी और शस्त्रों की परस्पर अभिन्नता स्थापित की गई है। गुरु जी ने शस्त्रों की परस्पर अभिन्नता स्थापित की गई है। गुरु जी ने शस्त्रों को महत्त्व देते हुए पीर के समान श्रद्धा अर्पित की है-

सांग सरोही सैफ अस तीर तुपक तरवार।
सत्रांतक कबचांति कर करीऐ रछ हमार।
अस कृपान खंडो खड़ग तुपक तबर अरु तीर।
सैफ सरोही सैहथी यहै हमारै पीर।

प्रथम अध्याय में लगभग ३० शस्त्रों के नाम गिनाए गए हैं। दूसरे में मुख्य तौर पर चक्र के नामों का उल्लेख है। तीसरे अध्याय में बाण के नामों पर प्रकाश डाला गया है और चौथे अध्याय में 'पास' के नामों का विवरण है। और पाँचवें अध्याय में तुपक अथवा बंदूक के नामों का चित्रण किया गया है। साधारणतः पौराणिक व्यक्तियों से सम्बद्ध प्राचीन काल की वस्तुओं अथवा नामों से सन्बद्धित कर वर्तमान की जनता को उनके प्रयोग की प्रेरणा दी गयी है। इस रचना के द्वारा प्राचीनों से सम्बंध बनाए रखने के लिए सुचारू प्रयास किया गया है।

चरित्रोपाख्यान

मुख्य रूप से स्त्री के विभिन्न स्वरूपों के चरित्रों को इस मे समाविष्ट किया गया है। इस में कतिपय पुरुष चरित्र भी हैं। परन्तु इसका मुख्य आशय स्त्री के चरित्रों को प्रस्तुत करना है। इन के द्वारा स्त्री की पति-भक्ति, प्रेम भवाना, देश एवं राष्ट् प्रेम, शूरवीरता, युद्ध-कला में नैपुण्य को प्रदर्शित किया गया है। इन के अतिरिक्त कतिप्रय भ्रष्ट चरित्र भी हैं। प्रथम चरित्र में देवी भगवती को प्रणाम करते हुए उस के स्वरूप और सामर्थ्य एवं कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है और उस के द्वारा सारी सृष्टि, सब अलौकिक शक्तियों आदि का सृजन माना गया हैं। इस पौराणिक महानारी की

स्तुति के पश्चात् स्त्री के चरित्र के बहु आयामी और बहु दिशावी रूप को देखते हुए रचयिता ने स्पष्ट किया है कि स्त्री के चरित्र को समझ पाना सरल नहीं है-

अरघ गरभ नृप त्रियन को भेद न पायो जाए।
तउ तिहारी कृपा ते कछु कछु कहो बनाए।

इस रचना की भेद भरी कथाओं और उन की चतुरता को सुनकर गूंगो को जीभ लग जाती है और मूर्ख को चालाकी के दावं अथवा युक्तियां समझ आ जाती हैं-

सुनै गुंग जो याहि सु रसना पावई।
सुनै मूड़ चित लाइ चतुरता आवई।

ये चरित्र किसी विशेष क्षेत्र, धर्म अथवा समाज के साथ सम्बंधित नहीं, अपितु यथा संभव प्रत्येक क्षेत्र अथवा समाज से चरित्र-कथाएं ले कर एक ऐसा संकलन तैयार किया गया है जो एक प्रकार से 'चरित्र विश्वकोश' कहा जा सकता है। इन चरित्रों के मूख्य स्रोत महाभारत, पुराण साहित्य, बृहत कथा, कथा सरितसागर, अल्फ़ लैला, अय्यारे दानिश अथवा देशी-विदेशी धार्मिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाएं हैं। इन कथाओं के मुख्य पात्र विलासी राजे रानियां, राजकुमार- राजकुमारियां, जागीरदार, साधु, संन्यासी, वेश्याएं, आलसी युवक-युवतियां और श्रेष्ठ चरित्रों वाली स्त्रियां हैं।

इन कथा-प्रसंगों से एक ओर ज्ञान का विस्तार होता है और दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, समाजों की संस्कृति का बोध होता है। इन की रचना का मुख्य मनोरथ नए सिरजे जा रहे सिख समाज अथवा खालसा को ऐसी पाठ्य-सामग्री देना था, जिस को पढ़ कर वे सांसारिक व्यवहार में सचेत हो सकें। इस प्रसंग में अनेक स्थलों पर आध्यात्मिक मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं का भी चित्रण हुआ है। कहीं कहीं रहतनामा के कथनों के समान कुछ काव्यांश भी मिल जाते हैं, यथा-

सुधि जब ते हम धरी बचन गुर दए हमारे।
पूत इहै प्रन तोहि प्रान जब लग घट थारे।
निज नारी के साथ नेह तुम नित बढैयहु।
पर नारी की सेज भूलि सुपने हुं न जैयहु।

इस रचना के अंत पर आत्म-समर्पण और आत्म-रक्षा के लिए वर याचना की जो भावाभिव्यक्ति हुई है, उस प्रकार की उपलब्धि धार्मिक काव्य में बहुत कम है। इस संदर्भ को सामान्यतः 'बेनती चौपई' की संज्ञा दी जाती है और इसे अमृत पान केअवसर पर पढ़ी जाने वाली बाणियों में शामिल किया जाता है। इसमें आत्म-समर्पण की भावना का सुंदर प्रदर्शन हुआ है।

साहित्य-सिरजना की भारतीय परम्पराओं की सब से बड़ी विशेषता यह रही है कि सारा साहित्य उद्देश्य-सहित रचा गया है। इसका अपना औचित्य है। इस उद्देश्य-निमितता के फलस्वरुप इस के कई पक्ष और आयाम सामने आते हैं। जिन चरित्रों में स्त्री के कामुक रूप का चित्रण हुआ है वह स्त्री जाति के निकृष्ट रूप को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के चरित्र में आने वाली स्त्रियों के द्वारा प्रकट किए निम्ऩस्तर के विचारों अथवा कर्माचारों के पीछे पुरुष के अत्याचारों, विश्वास-घात् पुरुषत्व का अभाव आदि दुर्गुण रहे हैं

जिन स्त्रियों को व्यभिचारी पुरुषों ने पतन के गर्त में धकेल दिया है और जिन को पुरुषों के दुर्व्यवहार ने विवश कर दिया है कि वे अपने नारीत्व के बल पर कुछ प्राप्त कर सकने की कला को विकसित करें। इस प्रकार की स्त्रियों के फ़रेबी हथकंडों से सदाचारी पुरुषों (विशेषतः खालसा) को सावधान करना ही गुरु जी का रचना-उद्देश्य प्रतीत होता है। क्योंकि सामाजिक जीवन को अधिक से अधिक पवित्र और धर्माधारित बनाना गुरु जी का मनोरथ था। इस लिए समाज के प्रत्येक स्तर पर व्याप्त पापाचार और कामुक उच्छृंखलता को स्पष्ट करने वाली ज्ञान वर्धक कथाओं की सविस्तार प्रस्तुति की गई है।

इस प्रकार चरित्रोपाख्यान में अनेक प्रकार की विसंगतियों से जूझती हुई स्त्री और कामुक अतृप्तियों के फलस्वरुप दबाई जानें वाली स्त्री के अनेक पक्षीय चरित्र वस्तुतः नए समाज की सावधानी के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। इन में श्रेष्ठ स्त्रियों का यशगान हुआ है और निकृष्ट स्त्रियों से बचने अथवा उन के चरित्र को सुधारने के लिए उपदेश दिए गए है।

जफ़रनामा

गुरु गोबिंद सिंह की ओर से औरंगज़ेब बादशातह को लिखा एक ऐतिहासिक पत्र है। यह पत्र सन् १७०६ ई. में मालवा प्रदेश के कांगड़ गांव में लिखा गया था और भाई दया सिंह और भाई धर्म सिंह के द्वारा बादशाह को भेजा गया था। इस का पहला भाग मंगलाचरण का है। इस में १२ छंद हैं। दूसरे 'दास्तान' भाग में गुरु जी ने बादशाह को स्पष्ट किया है कि किस प्रकार उस के सेना-नायकों और अधिकारियों की ओर से विश्वासघात कर गुरु जी की आनंदपुर से निकल रही सेना पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया और गुरु जी की सेना को बहुत हानि पहुँचाई। इस पत्र में गुरु जी ने औरंगज़ेब की वीरता के साथ साथ धर्मांधता का भी उल्लेख किया और उस की भर्त्सना की और उस के अधिकारियों द्वारा कसमों को तोड़ कर अधर्म-कर्म में रुचित होने की ओर संकेत किया और इस सब के लिए बादशाह को उतरदायी ठहराया। औरंगज़ेब की बादशाही के प्रति खेद प्रकट किया-

'कि हैफ़ अस्त सद हैफ़ ई सरवरी।'

इस पत्र से गुरु जी के व्यक्तित्व का बोध बड़े सुचारु ढंग से होता है। गुरु जी के मन में अपार और अदम्य उत्साह है। वे जो बात कहना चाहते थे, निसंकोच कह देते थे। उन के मन में किसी प्रकार का कोई डर नहीं था। वे नेकी और न्यायशीलता में विश्वास रखते थे और युद्ध उसी समय करने के लिए तैयार होते थे, जब उस के लिए अन्य सब साधन व्यर्थ हो गए हों-

चुं कार अज़ हमा हीलते दर गुज़शत।
हलाल अस्त बुरदन ब शमशीर दस्त।

उस युग के सशक्त बादशाह औरंगज़ेब की इतनी तीव्र आलोचना करने का साहस गुरु गोबिंद सिंह जैसे कर्मयोगी महा पुरुष में ही हो सकता था। यह पत्र इतनी निष्ठा एवं ईमानदारी और अद्वितीय साहस से लिखा गया था कि इस को पढ़ कर वृद्ध औरंगज़ेब का कठोर मन भी द्रवित हो गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि औरंगज़ेब को अपनी दुर्बलताओं और अन्याय का इतना गंभीर एहसास हुआ कि उसने शीघ्र ही प्राण त्याग दिए। ऐसे हृदय परिवर्तन के पीछे विचाराधीन पत्र का योग रहा है।

हिकायतें

'ज़फ़रनामा' के पश्चात् दशमग्रंथ में ११ हिकायतें भी संकलित हैं। ये फ़ारसी भाषा में लिखी हैं। ये वस्तुतः चरित्रोपाख्यान के सरणी पर लिखी गई हैं। इन सभी का आरंभ प्रभु के मंगलाचरण से होता है और प्रत्येक हिकायत के अंत में वर कामना की गई है।

स्पष्ट है कि गुरु जी ने असत् को दूर करने के लिए जिस महान् आंदोलन का कार्य प्रारंभ किया था, उस का एक महत्वपुर्ण और उत्साह वर्धक तत्व सत् साहित्य की सिरजना है। वही सत् साहित्य दशम ग्रंथ के रूप में हमारे तक पहुँचा है।

दशम ग्रंथ सचमुच मध्ययुग की ऐसी गौरवमयी रचना है जिस की सिरजना धर्म-युद्ध के लिए हुई थी और जिसने राष्ट्र के अंदर से परतंत्रता की भावना को दूर कर आत्मगौरव का संचार किया और खालसा को सद् धर्म का उपदेश दे कर उसे पूर्ण मानव बनाया। निर्गुणवादी काव्य-परम्परा की इस अपूर्व रचना में निर्गुण-निराकार में असुर संघारक रूप की कल्पना कर शास्त्र और शस्त्र, भक्ति और शक्ति का सामंजस्य किया।

भारतीय धर्मों के इतिहास में यह शोभाशाली और दुर्लभ उपलब्धि है